कब ले बीती अमावस के रतिया

गीताश्री

कब ले बीती अमावस के रतिया

बारह साल बाद जैसे उमा कुमारी के भाग्य जगे, वैसे ही सबके जगें। हाईवे के किनारे बसा पूरा गाँव चहचहा उठा था। सबकी जुबाँ पर यही बात थी। खातोपुर गाँव का उत्साह देखते बन रहा था। खुद उम्मी यानी उमा कुमारी के पतिदेव अचंभित थे कि जिस स्त्री को अब तक त्याज्य समझा था, उसे गाँव के लोग इतना प्यार कैसे करते हैं। उसे उम्मो के प्रति गाँव वालों के प्यार पर उतनी खुशी नहीं हो रही थी जितना अचंभा

https://www.hindiadda.com/kab-le-biti-amavas-ke-ratiya/

हो रहा था। वह अपनी शहरी आँखें फाड़ फाड़ कर कभी आधुनिक रंग ढंग में रँग चुकी युवा बीवी को देखे तो कभी ओसारे पर जमा महिला मंडल की औरतों को। सिर्फ औरतें नहीं, उनके आगे कई बच्चे खड़े खड़े, टुकुर टुकुर देखे जाएँ तमाशा। गाड़ी दरवाजे पर ही खड़ी थी। कोई उससे सवाल नहीं पूछ रहा कि इतने साल कहाँ रहे। जवान बीवी की खोज खबर क्यों न ली। क्यों लापता रहे कि कोई ढूँढ़ न सके। जब पता चला तो कहानी बदल चुकी थी। पता चले भी पाँच ही साल हुए।

उम्मो ने कैसे दिन रैन बिताए, क्या पता। उम्मो के पतिदेव यानी मालभोग ठाकुर जानना भी नहीं चाहते कि उम्मो के दिन रैन कैसे कटे उनके बिना। बस, वे इन दिनों खाली थे, पत्नीविहीन थे। पत्नी उनसे अलग होकर बच्चा समेत दूसरे परिवार में रम चुकी थी। लगभग शहर से गायब थी, जैसे वे खुद गायब हुए थे कभी। उन्हें पहली बार पता लगा था, लापता होने का दर्द पीछे छूट जाने वालो के लिए क्या होता है। अब वे लापता नहीं रहना चाहते थे और पुराने पते पर लौट जाना चाहते थे जहाँ कोई अब भी उनकी राह देख रहा था। उन्हें एक औरत की सख्त जरूरत थी जो शहर में उनके खालीपन को भर सके। उनकी देखरेख कर सके, उनका घर सँभाल सके। वे इन दिनों नितांत अकेले हो गए थे। तन्हाई काटे नहीं कट रही थी। अकेला घर काट खाने दौड़ता था। स्कूल से निकलने के बाद सीधे कोचिंग सेंटर पहुँच जाते और देर शाम तक का समय वहीं बिताते। रात तो आखिर सबको अपने घर लौटने पर मजबूर कर ही देती है। पहले वे कोचिंग सेंटर में एक घंटा समय देते थे। जब से अकेले हुए हैं, कोचिंग सेंटर में ज्यादा बैच पढ़ाने लगे हैं। कमाई भी अच्छी और वक्त भी अच्छा कट जाता है। घर की याद नहीं रह जाती। लेकिन कब तक, घर तो लौटना ही था।

दिनों के बीच में एक रात होती है जो विभाजन करती है। अगले दिन के लिए इनसान को तैयार करती है। एक नई शुरूआत के लिए रात एक स्पेस है जहाँ से प्रस्थान की भूमिका तैयार होती है। अगली रणनीति की योजना बनती है। रात सिर्फ विश्राम स्थल नहीं, प्रस्थान बिंदु भी है। जहाँ मालभोग उर्फ मालू जी तरह तरह की रणनीति बनाया करते हैं। जिंदगी अकेली न कटे, इसकी रणनीति रात में ही बनाते हैं जो सुबह तक ध्वस्त हो जाती है। किसे अपने साथ लें, किससे सलाह करें, हिम्मत नहीं जुटा पाते कि गाँव एक बार फोन करके बात ही कर लें। पाँच साल से संपर्क बढ़ाना शुरू किया था, जब बेटे ने कहा था - "दादी से मिलना है, गाँव कैसे होता है, आपका घर देखना है पापा..."

बेटा अपनी जड़ खोज रहा था और पापा जड़ से कट कर भुरभुरी जमीन पर उग रहे थे। उन्हें कभी अहसास ही न हुआ कि वे जड़विहीन हो चुके हैं और उनके पैरों तले ठोस जमीन नहीं, रेत ही रेत है।

1999 की गरमियों में जो घर छोड़ कर निकले, सो लौटे ही नहीं। एक खत लिख कर सूचित कर दिया कि वे हमेशा के लिए घर छोड़ कर जा रहे हैं। उनकी खोज बेकार है, कभी न लौटेंगे। जब तक वह स्त्री घर में रहेगी, हम पैर न धरेंगे। जवाब के लिए कोलकाता का एक पता भेजा था। उस पते पर गाँव से कोई न गया। जाता भी कौन। पिता तो बचपन में ही गुजर गए थे। बची थी केवल माँ और एक विवाहित बहन जो यदाकदा मायके की देखभाल बेटे की तरह करती थी। शिक्षिका माँ ने जरूर अपने हाथों से खत लिखा - जिसका मजमून इस प्रकार था -

प्रिय बेटा जी

आप हमारे लिए जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान हैं। आपने तो हमारी कोख को लज्जित किया है, हमें कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा है, हम आपको अपने जायदाद से भी बेदखल करते हैं और आज से मेरे लिए बेटा की तरह होगी आपकी पत्नी, मेरी बहू जिसे मैं अपनी पसंद से ब्याह लाई हूँ... जिसकी वजह से आप घर त्याग कर चले गए। अपनी माँ तक का खयाल न रखा। इस बुढ़ापे में मेरा कोई आसरा नहीं है सिवाय बहू के। हम इसके भरोसे जिंदगी काटेंगे। आप जहाँ रहें, खुश रहें, आबाद रहें... हम सब मर गए आपके लिए।

इस खत के साथ खातोपुर गाँव हमेशा के लिए दिल दिमाग से मिट गया। सबकुछ भुला कर मालभोग ने कोलकाता से भी दूर मणिपुर जाकर अपनी जिंदगी शुरू की। गणित में होशियार मालू ने वहाँ प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना शुरू किया और साथ में बी.ए. की पढ़ाई भी जारी रखी। जो भी फैसला उसने लिया, उसके लिए वह खुद ही तैयार नहीं था। मुजफ्फरपुर में होस्टल में रह कर पढ़ाई करते हुए उसे पता नहीं था कि उसके पीछे गाँव में उसकी माँ ने उसकी आगामी जिंदगी की पटकथा कुछ इस तरह लिख दी कि उसे सबकुछ छोड़कर अनजान नगर में बस जाना पड़ा।

कैसे भूल जाए **1999** की गर्मी छुट्टी को। **15** मई को गाँव आया दो महीने के लिए और इधर माँ ने बैंड बजवाने की पूरी तैयारी कर ली थी। वह चीखता रहा कि एक बार लड़की से मिलवा दो, माँ ने आगे में फोटो रख दिया। लड़की का बायोडाटा देखना चाहता था, माँ ने चार लाइन की जानकारी आगे में धर दी -

लड़की का नाम - उमा कुमारी, जन्म तिथि, शिक्षा - दसवीं पास, रंग - गेंहुआ-गोरा, लंबाई - पाँच फीट, गृहकार्य में निपुण, मृदुभाषिणी, लोकगीत से लगाव। व्रत त्योहार में गहरी आस्था।

बायोडाटा देख कर मालू ने माथा ठोक लिया। माँ खुद शिक्षिका होकर उसके भाग्य का ऐसा फैसला कैसे कर सकती थीं। वह हैरान था। उसने प्रतिवाद जताना शुरू किया, माँ अपना कलेजा पकड़ कर जमीन पर लुढ़क जाती। पूरा घर, पट्टीदार सब हाय हाय करने लगते। लगन के समय में ऐसा अशुभ नाटक करना मालू को शोभा नहीं देता है। सबलोग मालू को कोसने लगते। मालू को अपना भविष्य अंधकारमय दिखता और चुप लगा जाता। इसी माहौल में मालू ब्याह दिए गए उमा कुमारी से। उधर उमा कुमारी को कुछ नहीं पता कि लड़के वालों के घर में क्या चल रहा है। वे तो ब्याह कर आ गई। मड़वा में ही देख लिया था अपने पतिदेव को और निहाल हो गई थीं। पतिदेव ने एक बार भी पलट कर बहू का मुँह नहीं देखा। ससुराल में इतनी चुहल होती रही, मुँह दिखाई की रस्म हुई, काहे को मालू जी लट कर देखें। दुल्हे को अतिरिक्त रूप से गंभीर देख कर कुछ लोगों ने कानाफूसी शुरू कर दी थी।

मालू के चेहरे से साफ पता चल रहा था कि वे अपनी शादी में नहीं, किसी मातम में शामिल होने आए हैं। उनके मन में क्या चल रहा है, उससे सब अनजान थे। उमा कुमारी ने तो बस एक झलक देखी और उसी छवि में खो गई। उसके पास सपने बुनने का अवकाश था, भविष्य सोचने के लिए पर्याप्त अवसर भी। शादी ब्याह में दुल्हा दुल्हन को छोड़ कर सबके पास बहुत काम होता है। दो तमाशबीन होते हैं जो सारे रिश्तेदारों को नाचते हुए, चहकते हुए देखते हैं और मजे लेते हैं। दोनों की इतनी कद्र होती हैं कि कसम से जीवन में पहली और आखिरी बार वीआईपी होने का अहसास होता है। दोनों अपनी अपनी दिशाओं में खोए हुए थे। दोनों सपने बुन रहे थे, ऊन के गोले और उनके रंग अलग अलग थे। जबकि मर्जी की शादी में एक ही गान बजता है - तेरे मेरे सपने अब एक रंग हैं...। यहाँ तो रेत पर ताश के महल खड़े होने की नौबत आ गई थी। मालू जी दुल्हन लेकर चले और कोहबर में जाने से पहले ठिठक गए। बहन रास्ता रोकर खड़ी थी।

"बहिन सभ के नेग पहिले चुकइयो हे दुलरुआ भइया

तब जइहो कोहबर आपन... हे दुलरुआ भइया..."

मालू जी ने सोचा... अच्छा मौका है... पॉकेट से सारी सलामी निकाली जो ससुराल में आते वक्त बड़ों के पैर छूने पर मिली थी। जेब से निकाली और सारी की सारी बहन को

थमा दी। बहन गद्गद और हैरान दोनों। इतना कंजूस भाई इतना मेहरबान कैसे? वह संशकित होकर रास्ते से हटी और दुल्हन अंदर, समूची भीड़ अंदर, मालू बाहर से ही खिसक लिए। गर्दन से पीली धोती उतारी और देह पर से पीले अक्षत झाड़ते हुए सीधे दालान पर बैठ गए। वहाँ बहिन पहले से बैठी हुई जीजा के कान में कुछ कह रही थी... जीजा का चेहरा तन गया। वह सावधान की मुद्रा में उठा और मालू जी से चिपक गया। मालू को ये सब असहज लगा।

मालू ने कहा - "मुझे दिशा के लिए खेत में जाना है..."

जीजा ने कहा - "क्यों, बाहर मर्द वाले लैट्रीन में जाओगे तो कोई दिक्कत...? तुम्हीं शहरी लोगों के लिए बनवाया गया है साले बाबू..."

"हमको खुले में जाना है... कोई दिक्कत..."

"हाँ, दिक्कत, दुल्हा खेत में जाएगा... बताओ जरा। हालत देखी है अपनी... जाओ, चापाकल पर नहाओ धोओ पहले... फिर बाहर निकलने लायक लगोगे..."

"हमको आप मत बताइए... बोलते हुए मालू उठे और चौखट पर रखा लोटा उठाया और खेत की तरफ चल पड़े। पीछे पीछे जीजा जी..."

वह हाथ से इशारे करता रहा... लौटने का। जीजा क्यों लौटने लगे। मालू ने आँखें दिखाई तब जाकर जीजा के कदम रुके। वहीं खड़े रहे जहाँ से घनी झाड़ी नजर आने लगी थी।

उनका इंतजार लंबा खींच गया। वे झाड़ी में झाँकने गए। लोटा वैसे ही पड़ा था। मालू हाईवे का रास्ता पकड़ कर कब के दूर निकल चुके थे। गाँव की भोर हो चुकी थी। हल्के अँधेरे में ही दुल्हन विदा होकर आई थी। जब तक पूरा गाँव जगता, खेत की तरफ शौच के लिए आता, मालू गाँव से पार हो चुके थे।

जीजा जी खाली हाथ चिल्लाते हुए लौटे। माथा पीट रहे थे, उनको लोगों ने धरा। आँगन की औरतें बाहर निकल आई। कोहबर में औरतों से घिरी दुल्हन अकेली रह गई थी। उस तक सिर्फ आवाजें, चीख पुकार पहुँच रही थी।

उसके भीतर शोर नहीं, सन्नाटा पसर रहा था जिसके साथ जीवन बिताने का फैसला कर रही थी। ऊन के गोले बिखर गए थे। सपनों की स्वेटर उधड़ गई थी। उसमें पाँव

धँस रहे थे और आँखों से बुनाई दिखनी बंद हो गई थी। उसने कोहबर की दीवार पर सिर टिका कर आँख बंद कर लिया।

नींद, गम के मारों के लिए सांत्वना की तरह होती है। सारी रात की जगी उमा कुमारी को नींद आ गई थी।

उसके बाद उसे नींद से मोहब्बत होने लगी थी। जब मौका मिलता, कहीं भी सोने की जगह ढूँढ़ लेती थी। माहौल सामान्य हो चला था। मायके वाले विदा कराने नहीं आए। सासु माँ ने हमेशा के लिए अपने पास रख लिया। उन्हें घर देखने वाली की जरूरत भी थी। उन्हें सहायिका मिल गई थी। बेटे का गम भी खत मिलने के बाद कम हो गया। सलामती की खबर काफी राहत देती है। दोनों अपनी अपनी जिंदगी में रमने लगी थीं।

उमा कुमारी के पास रहने को घर तो था, खाने को अन्न था। सबकुछ जरूरत भर था। सासु माँ की तीर्थ यात्राएँ बढ़ चली थीं। पैसे की तंगी का रोना बढ़ गया था। उमा कुमारी की देह पर कपड़े जरूरत भर थे। खेत के अन्न और सब्जी से काम चलाने की नसीहतें थी। कपड़े खुद सिल कर पहनने की हिदायतें थी। स्वेटर खुद बुन कर पहनने का हुकुम था। बाजार पहुँच से बाहर था। सासु माँ का जुमला अक्सर उछलता था -

"का पर करूँ सिंगार, पिया मोरा आन्हर..."

सिंगार के लिए न पैसे थे, न साधन न मन। न घर के काम कभी खत्म होते थे। मन में छोटी सी इच्छा जग रही थी... कि सासु माँ की तरह ही टीचर ट्रेनिंग करके टीचर बन जाए। सरकारी नौकरी की चाहत उसे खींच रही थी। जी जान लगा कर सासु माँ की सेवा में खुद को लगा दिया था। उनका हर सितम सहे जाए, कड़वे वचन को हवा में उड़ा दे। सासु माँ यानी शशिकला देवी अपनी बहू की सेवा से प्रसन्न रहती थीं और पट्टीदारों के सामने बेटे को कोसती रहती थीं जिसने उनकी पसंद की बहू को अपनाने से इनकार कर दिया था। इस बात को वे अपनी पराजय के रूप में लेती थीं। एकाध बार दबी जुबान में किसी रिश्तेदार ने कहा - "लड़की की उम्र ही क्या है, ब्याह क्यों नहीं देती... क्यों मरद के बिना घर में बिठा रखा है... कहीं ऊँच-नीच हो गया तो..."

बड़ी गोतनी ने कहा - "बहू बना कर लाई थी, बेटी बना कर ब्याह दो। कब तक घर पे बिठा कर रखोगी लड़की को... बेटे ने तो छुआ तक नहीं लड़की को..."

शशिकला देवी बुरा मान जातीं।

"अरे... ऐसे कैसे... मेरे घर की इज्जत है, ब्याह कर लाई थी, मरते दम तक यही मेरी बहू रहेगी... चाहे बेटा वापस लौटे न लौटे..."

"अब क्या लौटेगा... मालू की माय, परदेस में बस गया, शादी कर ली, बच्चे हो गए होंगे... तुम भी किस निर्मोही के इंतजार में बैठी हो..."

शशिकला देवी कुपित हो उठतीं। उन्हें लगता कि सब मिल कर उनके बुढ़ापे का सहारा छीनना चाह रहे। जाने क्यों उनको लगता कि एक दिन उनका बेटा लौटेगा और उनकी पसंद को अपना लेगा। पागल है, एक बार देखता तो सही... सुहागरात मना लेता तो कभी ना जा पाता... बहू इतनी भी बुरी नहीं है... सुंदरता का क्या है... जितना सँवारो, सँवरती है...

उन्हें मलाल रह गया कि बेटे ने बहू को जी भर के न देखा न प्यार किया। और बहू ऐसी कि कभी शिकायत नहीं करती। दिन भर काम में जुती रहती, खाली समय में कुछ कुछ बनाती रहती और सोती रहती। नींद बहुत प्यारी थी उसे। नींद के कारण शशिकला देवी बहुत डाँट लगाती थीं। उमा कुमारी को डाँट का कोई फर्क नहीं पड़ता था। फर्क तब पड़ता था जब वह नगद रुपये उनसे माँगती और वे कोई बहाना बना कर टाल जातीं। दस सवाल पूछतीं। फिर उसने माँगना ही बंद कर दिया। किताबें चाहिए थीं, आगे की पढ़ाई करनी थी। दस काम होते थे जिसके लिए कैश चाहिए। हर रोज नींद में जाने से पहले उपाय सोचती...

दशहरे की छुट्टियाँ थीं। शशिकला देवी गायत्री परिवार की महिलाओं के साथ हरिद्वार के लिए रवाना हो चुकी थीं। घर में अकेली उमा कुमारी और अन्न पानी। बगल में कुछ पट्टीदार लोग। जिनकी चहल-पहल से उसे आश्वस्ति मिलती कि लोग हैं आसपास। मौसम बदलने के कारण आसपास रौनक ज्यादा थी। गाँव के पास से ही हाईवे गुजरता है सो बाहर की आबोहवा आती थी। एक दोपहर मचिया पर बैठी बैठी उमा नगद रुपयो के बारे में सोच रही थी। कैसे पैसा आए, कहाँ से, ...सामने बड़ी-सी टोकरी में गेंहू पर नजर पड़ी। मोटा दाना , साफ सुथरा, सोने-सा दमकता हुआ। उमा उठी और बाहर की तरफ दौड़ी। मँगरू लाल बाहर गाय के लिए चारा काट रहा था। उसकी बीवी उसके लिए खाना लेकर आई थी। दोनों साथ साथ बैठे किसी बात पर ठिठिया रहे थे। उमा का मन न हुआ कि इस रंग में भंग डाले। कुछ देर खड़ी रही। अपलक दोनों को देखती हुई... उसे नींद की तलब महसूस होने लगी थी। अभी बिस्तर मिलता तो सो जाती...

मँगरू की नजर पड़ गई। उसने अपनी बीवी को भेजा। नींद के झोंके से उबर कर उमा कुमारी ने मँगरू की बीवी को अपनी योजना बताई। फिर क्या था। थोड़ी देर में दोनों गाँव से निकल कर साप्ताहिक हाट में पहुँच गई थीं। टोकरी का गेंहू अच्छे मोल में बिक गया। हथेली पर रुपया लिए, रिक्शा पर बैठी दोनों स्त्रियाँ खिलखिलाती हुई चली आ रही थीं। मँगरू ने यह दृश्य देखा, उसे भीतर से राहत मिली। उसने बाद में अपनी बीवी को उमा की दोस्ती में निहाल होते देखा। जब। तक मलकिनी नहीं आ रही हैं, तब तक दोनों खूब घूम लो... आते ही पता चलेगा... मन ही मन बड़बड़ाता मगर टोकता नहीं। जानता था कि यह चार दिन की चाँदनी है... उमा के हिस्से फिर अँधेरा।

दोनों रोज बाजार जातीं, पहले उमा ने रेशमी धागे और सूती कपड़ों से स्टायलिश झोले बनाए, उन्हें बेचा, फिर गुड़िया, गुड्डे, मोतियों से छोटे छोटे पर्स बनाए, सब बाजार में बिकते गए। हेयर बैंड बनाया। जो बनाती, एक दुकानदार सब खरीद लेता। उमा को ऑर्डर मिलने लगे। वह अपने लिए पहली बार सलवार कुर्ता खरीद कर लाई, नाइटी लाई, किताबें, और सिंगार के कुछ सामान। शशिकला देवी ज्यादा दिन वहाँ रुक गईं। उमा को और आजादी मिली। वह मन ही मन दुआ करती कि कुछ समय और न आएँ। उसने अपने पुराने कपड़ों को मिलाकर रंगीन धागे से सूजनी बनाया, वो तो गाँव के लोग ही हाथोंहाथ खरीद ले गए। उमा के हुनर की खुशबू दूर दूर तक फैलने लगी थी। शशिकला देवी लौटी तो झटका खा गईं। जिस उमा को छोड़ कर गई थीं वो तो नहीं मिली उन्हें। जो उमा मिली वो उन्हें गवारा नहीं हुई। बहुत कलह हुआ और अंत में एक घर को दो स्त्रियों ने मिल कर आपस में बाँट लिया। शशिकला देवी का बस चलता तो घर से निकाल देतीं। लेकिन तब तक उमा का पट्टीदारों में और आसपास बहुत समर्थक हो गए थे जो अकेली शशिकला देवी पर भारी पड़ गए थे। शशिकला देवी लोकोक्तियों के लिए मशहूर थीं। पट्टीदार पहले से खफा थे, उन्हें मौका मिल गया। क्योंकि शशिकला अक्सर कहा करती - "दाल और पट्टीदार जितना गले, उतना अच्छा।"

अब पट्टीदारों ने कहा - "न तुम्हारी दाल गलेगी न हम पट्टीदार। गलोगी तुम। सब गए छोड़ कर, बहू भी गई। देखते हैं, बेटी कितने दिन देखरेख करेगी।"

इस प्रकार से दो स्त्रियों में पहली बार विभाजन देखा गया। उमा ने अपने काम के साथ गाँव की पाँच स्त्रियों को जोड़ लिया था। अब उसे नींद कम आने लगी थी। काम और पढ़ाई से फुरसत कहाँ। उसका घर हस्तकला का छोटा मोटा सेंटर बन गया था। हाईवे से गुजरने वाले टूरिस्ट को ढाबे वाले इस घर की तरफ भेज देते थे। जो आता, बिना कुछ खरीदे नहीं जा पाता।

दिन कट रहे थे। कई साल बीत गए। उमा ने काम को ज्यादा नहीं बढ़ाया। उसे तो सरकारी नौकरी में जाना था। उसी दिशा में आगे बढ़ रही थी। अपने साथ साथ पाँच और औरतों को रोजगार दिलवा दिया था। खुद पढ़ाई में और ट्रेनिंग में व्यस्त। शशिकला देवी ताना मारतीं - "किसके नाम का सिंदूर लगा रखा है। मिटाती क्यों नहीं, मेरा बेटा गया तुम्हारे हाथ से। उसका घर बस गया। वह कभी नहीं लौटेगा। मैं भी उसी के पास चली जाऊँगी... यहाँ का सब बेचबाच दूँगी... देखती हूँ फिर कौन तुम्हे संपत्ति में हिस्सा दिलवाता है... चली क्यों नहीं जाती ये गाँव छोड़ कर... क्या रखा है यहाँ...?"

उमा ने कभी पलट कर जवाब नहीं दिया था। पहले रो धो कर रह जाती या नींद लेने चली जाती। अब सुनकर मुस्कुरा देती है। काम में लग जाती है। शशिकला के सारे वार खाली चले जाते। उमा ने हमेशा सिंदूर, बिंदी लगाई। एकाध बार उसकी सहेली रूपा ने टोका भी...

उमा ने जवाब दिया - "तू अपने समाज को नहीं जानती... अभी तो नाम के लिए पति है न, जिस दिन यह निशानी भी मिटा दी, सब मेरा क्या हाल करेंगे... मैं गाँव के इसी घर में इसीलिए पड़ी हूँ कि पति का घर तो है... मैं अकेली छोटे शहर में कैसे जी पाऊँगी... सोच जरा... कोई मरद तो चाहिए न साथ... न भाई है न बाप... सबने मुझे मरने के लिए यहाँ छोड़ दिया, मैं कैसे खुद को मरने दूँ... मैं मरने तक जिंदा रहना चाहती हूँ, वो भी अपने हिसाब से... किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती... जो किस्मत में था, वो तो हो गया, मैं अपनी किस्मत बदल नहीं सकती, खुद को बदल सकती थी, बदल दिया, अब चलने दे... देखा जाएगा... जिंदगी पूरी पड़ी है... नौकरी हो गई तो यहाँ से चली जाऊँगी... उसके पहले नहीं।"

"कब ले बीती अमावस के रतिया..."

रूपा चुहल करती...

"अरे... बीत जाएगी सखि... कोई अमावस इतनी लंबी नहीं होती कि अँजोरिया रात को रोक ले..."

उसी टोन में जवाब देती उमा।

दोनों हँस पड़ती एक साथ। रूपा के साथ चुहल के पल खूब मिलते थे। सुख-दुख के बीच भी दोनों चुहल कर लेती थीं।

"और सिंदूर कब तक लगाएगी...?"

उमा के सिंदूर पर उँगली धरते हुए पूछा था।

"एक बार मुझे उनसे मिलना है रूपा... एकबार...फिर..."

"जब तक तू सिंदूर लगाएगी, कोई और मरद तेरी तरफ ताकेगा भी नहीं... ऐसे ही जीवन गुजारेगी क्या...?"

उमा को ऐसी बातों पर फिर से नींद आने लगती थी... लंबी नींद... जिसमें अपने लिए वह सुकून ढूँढ़ा करती थी। नींद की पनाह उसके लिए कितनी जरूरी थी। नींद उसके लिए वह नदी थी जिसमें तैर कर दुख से दूर जा सकती थी। नींद में पानी ही पानी और उसमें डूबती उतराती उमा। कभी नदी, कभी झील, कभी पानी में डूबे खेत... कोसी नदी मानो खेतों में घुस आई हो... उस पानी में देखती हरी भरी फसलें सीधी खड़ी होने के बजाय पानी पर सो जाती थी... अधलेटी-सी...

उमा की पनीली नींद हमेशा कर्कश आवाजों से खुलती थी। पूरा शरीर गीला होता था। जाने नींद भिगोती थी या पसीना होता था। गरम सपनों के भाप से भी तो भीग जाते हैं हम।

ऐसे जाने कितने बरस बीते। उमा ने बरस नहीं युग गिने। उम्र नहीं गिनी, जिंदगी के दिन गिने। बारह सालों के संघर्ष ने उसे 32 साल की उम्र में चालीस पार का बना दिया था। इस बीच पति की तरफ से कोई संपर्क की कोशिश न हुई, न कोई खत आया। उमा ने अपने मोबाइल नंबर को हवा की तरह दूर दूर तक फैला दिया था। नौकरी के इंतजार में बेहाल हो गई थी। वैकेंसी निकलती तो आवेदन करती। कहीं न कहीं कोई विवाद खड़ा हो जाता, फिर रुक जाती बहाली। समस्तीपुर, कोचिंग सेंटर के अधेड़ मालिक द्रुमदल सिंह उमा के लिए वैकेंसी पर खास नजर रखते थे। दिल से उसकी मदद करना चाहते थे। उनका मानना था कि औरतों के लिए टीचिंग जॉब सबसे बेहतर और सुरक्षित होता है। वे ग्रामीण पृष्ठभूमि की लड़कियों, औरतों को यही समझाते थे। उन्हें सारी जानकारी मुहैय्या कराते थे। उमा को उनके रूप में एक बड़ा सहारा मिल गया था। उमा को किसी भी दिन अप्वाइंटमेंट लेटर का इंतजार था।

आँगन में अपनी हस्तकला टीम के साथ बैठी उमा गप्पे मार रही थी। इस महीने एक एनजीओ ने अलग तरह के कलात्मक झोला बनाने का बड़ा ऑर्डर दिया था। सभी लगी पड़ी थीं जी जान से। रेशमी और सूती धागो का संसार आँगन में फैला पड़ा था। टीम में शोभा पैचवर्क का काम अच्छा कर लेती थी सो एनजीओ का लोगो बनाने में व्यस्त थी। यह स्त्रियों का साझा संसार था जहाँ सबके चेहरे पर स्वाभिमान का नूर

टपकता था। तभी बाहर से कुछ शोर सुनाई पड़ा। कोई गाड़ी रुकी थी। सबसे पहले आँगन में शशिकला देवी दाखिल हुईं, साथ में रिश्ते की औरतें। सबके चेहरे खिले हुए। उमा से अलग बात करना चाहती थीं। उमा ने हैरान होकर देखा। कई साल बाद उसकी तरफ कदम धरा और उससे बात कर रही हैं। पिछले कुछ सालों में तो उमा के मरने जीने की खबर भी न ली। न उमा को अपनी तरफ फटकने दिया। ऐसी दीवार खींच दी थी कि दोनों उसके पार नहीं देख पा रही थीं। उमा चकित होती हुई उनके पास गई। शशिकला देवी को सुनते हुए उमा के चेहरे का रंग पल पल बदल रहा था। कोई एक रंग टिकता न था। सारी औरतें काम छोड़ कर बाहर निकल गईं। बाहर पहले से ही काफी लोग जमा थे। वहाँ तरह तरह की सरगोशियाँ सुनाई दे रही थीं। औरतें मुँह पर हाथ रखें बोले कि उमा के भाग जग गए। ऐसे ही सबके जगें। बारह साल बाद आदमी लौट आया। उमा की तपस्या रंग लाई... माँ का बेटा लौट आया... अब सब ठीक हो जाएगा... बड़ा दुख देखी हैं सास बहू... अब सब मिल जुल कर रहें... और क्या चाहिए...

बाहर कुर्सी पर बैठा मालू बेचैनी से पहलू बदल रहा था। निगाह आँगन की तरफ थी। वह पहले सीधे आँगन में आना चाहता था लेकिन माँ ने रोक दिया था। शशिकला देवी खुद को फिर से बीच में रखने की ख्वाहिशमंद थी। आखिर इस बहू को ब्याह कर तो वही लाई थीं। सीधे बेटे को डील करने कैसे दें, कहीं दोनों मिल गए तो उनका क्या होगा। बड़ी मुश्किल से तो बेटा लौटा है, बहू को अपनाना चाहता है। उनके कलेजे पर रखा पत्थर हट गया था। गायत्री मंत्र का जाप करती हुई वे उमा से बात करने घुसी थीं।

उमा ने उनकी पूरी बात सुन ली। उसकी आँखें बार बार छलक रही थीं। मन हुआ, सारा गुस्सा, मान सम्मान झटक कर दौड़ जाए, बाँहों में झूल जाए... खूब लड़े, खूब बोले... एक जमाना बीत गया, पूरे जमाने की बात कह ले... वो सारी चिट्ठियाँ जो बिन पते के लिखी थीं, उन्हें पढ़वा दे।

उससे बाहर न जाया गया। बाहर की भीड़ उसे अच्छी नहीं लग रही थी। उसने शशिकला को धीरे से कहा -

"उनको अंदर भेज दीजिए। आप लोग जाइए... हम अकेले में बात करना चाहते हैं..."

मालू को इसी पल का इंतजार था। पल भर में वह उमा को बाँहों में घेरे हुए खड़ा था। भीड़ बाहर दुआएँ पढ़ रही थी।

उमा से कुछ न कहा गया... फफक कर रो पड़ी। मालू की बातें उसे सुनाई दे रही थी...

पूरे एक युग की कथा वह उसी पल में बता देना चाहता था। अपने भागने की कथा से लेकर वापस आने तक की कथा। जबरिया ब्याह ने उसके भीतर गुस्सा भर दिया था। घरवालों से बदला लेने के लिए उसने ऐसा किया... अपने हर गुनाह को वह कबूलता गया... मणिपुर में अपनी शादी की बात, फिर बच्चा... फिर पत्नी से मनमुटाव... फिर पत्नी का बच्चा समेत घर छोड़ कर चला जाना... बिना बताए... जाने कहाँ... कोई क्लू नहीं मिल रहा है...

एक बार भी ये नहीं कह पाया मालू कि उसे कभी एकांत में उमा की याद आई। जमाने की उस कथा में कहीं जिक्र न था उमा का।

उमा ने गला साफ करके मुलायम आवाज में पूछा - "अब क्यों आएँ हैं? मुझसे क्या चाहते हैं?"

"अरे, माँ ने बताया नहीं क्या...", मालू झुँझलाया।

"हमें आपसे जानना है..."

"तुम साथ चलोगी न, हम कोलकाता शिफ्ट कर गए हैं, मणिपुर हमेशा के लिए छोड़ दिया है... तुम्हारे साथ नई जिंदगी शुरू करना चाहता हूँ... मेरे साथ चलो..."

"आपने जो मेरे साथ किया, उस पर शर्मिंदा हैं आप...? हमसे माफी माँगिएगा, सबके सामने... गाँव वालों के सामने... अपनी माँ के सामने... लिखित दीजिएगा कि हमसे ये ये गलती हुई और आगे फिर कभी नहीं करेंगे ऐसा?"

"मेरा जीवन था, मुझे हक था अपने हिसाब से फैसला लेने का, लेकिन तुम्हें लगता है, मैंने गलती की तो गलती तो हुई उमा... लेकिन माफी क्यों... पति पत्नी में एतना कहीं लिखत पढ़त होता है, तुम कोर्ट हो क्या...? कैसी बातें करती हो...?"

"आप मेरी वो रातें, वो मेरा इंतजार, मेरा सम्मान लौटा देंगे..."

"पूरी कोशिश करेंगे..."

अपना तपता हुआ गाल मालू ने उमा के गाल से सटाना चाहा...

उमा पीछे हटी। हाथ से उसके चेहरे को दूर किया।

"आपकी जिंदगी थी, आपने फैसला किया, मेरी जिंदगी तबाह कर दी... एक बार भी सोचा नहीं, कोई अपराधबोध भी नहीं आपको? आपको सबकुछ कितना आसान लग रहा है न मालू बाबू?"

उमा के मुँह से मालू बाबू सुन कर मालू को अजीब-सा लगा। वह तो एक ग्रामीण, देहाती पत्नी की उम्मीद में आया था जिसे लेकर उसकी अलग राय थी। जिसमें एक राय ये भी थी कि देहाती पत्नियाँ ज्यादा टिकाऊ होती हैं।

"उमा कुमारी ठाकुर... चलिए अब चलने की तैयारी करिए... माँ से बात हो गई है, गाँव वाले भी सब बहुत खुश... सब आपकी तारीफ कर रहे थे। गाँव वालों पर तो तुमने जादू कर दिया है..."

"अगर मैं न जाना चाहूँ तो**...?**"

"तो मैं तीसरी शादी कर लूँगा... मत जाओ... मुझे पत्नी चाहिए... औरत चाहिए... मुझे घर बसाना है... अकेले जीवन नहीं काटना है... वंश चलाना नहीं है क्या...? एकलौता बेटा हूँ खानदान का... दामोदर ठाकुर का बेटा मालभोग ठाकुर निःसंतान नहीं मरेगा उमा देवी... समझीं... चलिए... अब तक आप मेरे घर में हैं, मेरी पत्नी के रूप में... आप पर मेरा हक बनता है... मर्जी से नहीं जाएँगी तो जबरन ले जाऊँगा... जब तक साथ नहीं चलती, मैं यहाँ रहूँगा..."

मालू गुस्से में काँप रहा था। वह इतने साल बाद लौटा है और पत्नी स्वागत करने के बजाय बहस तलब कर रही है।

बाहर तक मालू का चीखना पहुँच गया था। बाहर खड़ी भीड़ के सुर बदल गए थे।

"ऐसे कोई करता है क्या, इतने दिन बाद भाग जगे हैं, अब तो सुख के दिन आए हैं, क्यों नखरे कर रही है**...?**"

शशिकला देवी की आवाज - "चार पैसे क्या कमाने लगी, चार अक्षर क्या पढ़ लिए, दिमाग खराब हो गया है इस औरत का... जाना तो पड़ेगा चाहे थाना सिपाही करना पड़े..."

उमा ने मालू को घर से निकल जाने का इशारा किया। वह बौखलाया हुआ पलटा। मन हुआ एक तेज झापड़ लगा दे और झोंटा घसीट कर गाड़ी में बिठा ले। शशिकला देवी किसी से थानेदार को बुलाने की बात कर रही थीं।

बाहर ये सब चल रहा था कि उमा अपने हाथ का बनाया हुआ कलात्मक झोला लिए हुए बाहर निकली। क्रीम कलर का दुपट्टा ओढ़ा जिस पर अपने हाथों से मिथिला पेंटिंग बनाई थी।

"श्रीमान मालभोग ठाकुर... आप अपने नाम के अनुसार ही बहुत घटिया इनसान हैं। जाने क्या सोच कर आपका नाम आपके खानदान ने रखा। नाम का बहुते असर होता है इनसान पर। हम औरतें आपके लिए माल नहीं हैं कि एक से मन भर गया तो दूसरी को भोगने आ गए।"

"मुझे खेद है कि अब तक आपके घर में रही, पत्नी की तरह... यह कैद मेरी चुनी हुई थी, आज से आजादी भी मेरा चयन। आपका घर, आपकी पहचान, सुहाग के चिह्न जिन्हें मैने कर्तव्य समझ कर ढोया, ये सब यहीं छोड़ कर जा रही हूँ... सँभालिए..."

"थाना सिपाही आप क्यों बुलाएँगी, अम्मा जी... हमीं बुला देते हैं... हम बच्चे नहीं, पुलिस जानती हैं कि एक युग के बाद रिश्ता अपने आप खत्म हो जाता है... हमारे गाँव में तो बारह साल बाद गायब आदमी को मरा हुआ मान कर श्राद्ध भी कर देने का रिवाज है, यकीन न हो तो पंडित जी को बुला कर पूछ लीजिएगा।"

तनाव से उमा कँपकँपा रही थी। काँपते हाथों से उसने झोले से अपना मोबाइल निकाला कि मोबाइल बज उठा। मँगरू की पत्नी पीछे आ खड़ी हुई थी। उमा ने उसको आदेश दिया - "घर खाली कर दो, काम का सारा सामान अपने यहाँ ले जा... हम अपना घर बनाएँगे।"

मँगरू की बीवी काम में जुट गई। पैर पटकता हुआ मालू बाहर की तरफ जाकर जोर जोर से चीखने लगा था। उमा बेपरवाह, मोबाइल पर बात करती हुई सधे कदमों से सड़क की तरफ बढ़ी। गहरे तनाव में थी मगर पहली बार उसे नींद की तलब महसूस नहीं हो रही थी।

https://www.hindiadda.com/kab-le-biti-amavas-ke-ratiya/